MAH/MUL/03051/2012
ISSN-2319 9318

MAH/MUL/03051/2012
ISSN-2319 9318

विद्यावार्ता

Peer Reviewed International

interdisciplinary multilingual research journal

Issue-57, Vol-13, Jan. To March 2026

Editor

Dr.Bapu G. Gholap

16

कुच्ची का कानून : स्त्रीत्व का हठ

डॉ. मीना राठौर
सहायक प्राध्यापक, हिंदी
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस
श्री नीलकंठेश्वर शासकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, खंडवा

****

लेखक शिवमूर्ति जी को ''अगम बहे दरियाव'' में पढ़ा और उसी दौरान आनन्द गुजरात में हिंदी रिफ्रेशर के दौरान वल्लभ भाई पटेल यूनिवर्सिटी में उनका लेक्चर सुना और बातों के दौरान उनके पात्रों पर भी बात हुई। जब उन्होंने कुच्ची नामक पात्र की बात की और अपने मोबाईल में उस स्त्री के फोटो दिखाए तब लगा स्त्री जब जिद पर आ जाये तो फिर गाँव हो या शहर वो पीछे नहीं हटती। तमाम तरह की परम्पराए मान्यताये उसके एक निर्णय के आगे ध्वस्त हो जाती है। समाज जिस स्त्री को परम्पराओं, नियमों, रीतिरिवाजों और कानूनों का हवाला देकर बाँधने की बात करता हैं वह स्वयं ये क्यों भूल जाता है कि स्त्री बंधी भी स्वेच्छा से ही है। जहाँ उसका मन रमा वो वहीं की होकर रह गयी और जहाँ उसके मन को उगने लायक खाद पानी और हवा नही मिली वहाँ काँटों की बागड़ से घिरा उसका लहुलुहान शरीर भले कैद हो वो वहाँ से जा चुकी होती है।

तमाम तरह के पुरुषवादी विमर्श सदियों से इस बात के लिए चीखते रहे है कि स्त्री को जीने के लिए पुरुष के सहारे की जरूरत होती है, लेकिन वास्तविकता इसकी ठीक उलट है। स्त्री ने अपने जीवन को कभी इस तरह से देखा ही नहीं कि कौन किसके लिए और कितना जरूरी है वो बस नदी की तरह अपने दायित्व निभाते जीवन रूपी पथ पर आगे बढती रही। और तभी पुरुष को इस बात का एहसास हुआ कि अगर यह इसी तरह उन्मुक्त होकर जीती रही तो हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा फिर उसने शुरू की स्त्री की मर्यादाओं की लम्बी चौड़ी फेहरिस्त स्त्री को ये करना चाहिए ये नही करना चाहिए तमाम तरह के अधिकार अपने पास रख कर्तव्यों की पोटली का बोझ स्त्री के माथे पर रख चलता बना।

शिवमूर्ति जी कुच्ची के रूप में सदियों से लोकलाज के घुंघट में दबा कर रखी गयी उस स्त्री को बाहर लाते है जो आज भी मुखर है ..बेबाक है जैसे नियम कानूनों का भय नहीं ..जो समाज के भय से खौफ नहीं खाती उलटे अपने निर्णयों से समाज को सोचने पर मजबूर करती है। ऐसा भी नहीं है कि इस विराट विश्व में कुच्ची एक मात्र स्त्री है जो अपनी देह से जुड़ी मर्यादा स्वयं तय करती है बस फर्क इतना भर है लाखों कुच्चियों की आवाज उस दायरे में ही दम तोड़ देती है जिसे उसने तो नहीं बनाया पर बनाया उसी के लिए गया है।

सारे पुरुष समाज के साथ आधी आबादी को भी सांप सूंघ जाता है जब दो साल से विधवा का जीवन जी रही नवयोवना कुच्ची अपने पेट में पल रहे बच्चे के लिए बाप का नाम जरूरी नहीं समझती —"किसी का नाम धरना जरुरी है क्या अम्मा ? अकेले मेरा नाम काफी नहीं है ?"[१] आखिर किसी स्त्री की सन्तान पर उसका अधिकार क्यों नही ? क्यों किसी पुरुष के नाम की जरुरत है ? कुच्ची का सवाल उतना भी असामाजिक नहीं जितना उसे बना दिया गया। लेकिन सदियों से जिन वजहों को स्त्री के खिलाफ समाज आसानी से उपयोग करता रहा कुच्ची उस वजह को ही समाप्त कर देती है। आखिर यह साहस आया कहाँ से ? या कही गया ही नही था। सिर्फ उसे समय— समय पर दबाया जाता रहा ताकि पुरुष का झूठा अहं बेपर्दा न हो जाये।

अगर स्त्री अपने बलबूते जीना सीख गयी तो अपने अहं के मद में चूर पुरुष आखिर कहाँ जाकर अपना रौब दिखायेगा ? मर्दानगी की बातें कौन सुनेगा ? इतिहास उन्हें धिक्कारेगा अलग कि कैसे पुरुष हो ? पुरुषत्व को नकारने वाली स्त्री का कुछ बिगाड़ नहीं पाए ? यानि सब कुछ सिर्फ और सिर्फ स्त्री पर लगाम लगाने के लिए उंसे उसके साहस से दूर रखने के लिए

उंसे हर तरफ, हर जगह, हर समय यह ये एहसास दिलाने के लिए कि तुम साहसी नहीं हो उंम साहसी हो ही नहीं सकती विंरना पुरुष अपना साहस साबित कहाँ करेगा ? और जब कोई कुच्ची इस डर से इंकार करती है तब कितनी बहू बेटियाँ है इस देश में कि रोज जलने और जहर खाने के बाद भी खत्म होने को नहीं आ रही हैं ?''[२] या तो मार दी जाती है या मरने को मजबूर कर दी जाती है। लेकिन इनके हक के लिए कभी कोई पुरुष आगे नहीं आया और ओरतों से उम्मीद भी क्यों की जाये।

भारतीय समाज में विधवा जीवन को इस कदर महिमामण्डित किया गया है कि वह चाह कर भी सामान्य जीवन जीने के लिए सोच न पाए। उसके शरीर को खानदान की इज्जत के तौर पर किसी वस्तु की तरह मान लिया गया जिस पर किसी गैर मर्द की नजर भी परिवार और रिश्तेदारों को बर्दास्त नहीं। लेकिन उस विधवा की इच्छाओं का क्या? क्या उसका शरीर पत्थर का बना होता है? मर्द अकेले जिन्दगी नहीं काट सकता तो फिर औरत अकेली क्यों कर काटे अपनी जिन्दगी? लेकिन यहाँ सिर्फ विधवा कुच्ची का ही जीवन दांव पर नहीं लगा है उसके साथ उसके बूढ़े सास — ससुर का जीवन भी नर्क बना हुआ है। जवान बेटे की मौत किस माँ बाप को नही तोड़ देती।

कुच्ची अपने मायके लौट सकती है। शायद दोबारा घर भी बसा लेती। लेकिन उसके मन में अपने बूढ़े सास — ससुर के लिए करूणा और सेवा का भाव भी है जिसके चलते वह अपने मायके वापस न जाकर ससुराल में ही रह जाती है। जवान ओर निसंतान विधवा होकर जीना रोज एक युद्ध लड़ने के जैसा था। इस बात को उसकी बूढी सास भी अच्छे से समझती है पर किस्मत को कोसने के अलावा उसके पास कोई उपाय नहीं —"सब बिगड़ गया बिटिया। उस एक के जाते ही सब बिगड़ गया। भगवान तेरे पेट में एक बिरवा रोप दिए होते तो हम जी जाते। तब मै थोड़े तुझे कहीं जाने देती। उसी के सहारे हम सब जिन्दगी काट देते।''[३] जवान विधवा बहू को गाँव के ही लोगों की गंदी नजर से न बचा पाने का दुःख दोनों बूढ़े प्राणी सह नहीं पा रहे थे।

ओरत जवान हो या बूढ़ी जब भी असहाय हुई है उसने सहारे के लिय अपने मायके की तरफ ही नजर उठाई है। बूढ़े सास—ससुर के पास कुच्ची को सहारा देने के लिए कोई और उपाय नहीं बचा उसे मायके वापस भेजना ही अंतिम उपाय रह गया। लेकिन कुच्ची अपने जेठ बनवारी की हरकतों से वाकिफ थी। उसे पता था उसके जाते ही जेठ किसी दिन भी बूढ़े सास ससुर की जमीन हथिया लेगा और हुआ तो उनको जान से मार भी देगा —"वह आपके मरने का इन्तजार नहीं करेगा अम्मा, मारने का इंतजाम कर देगा। मै ही हूँ, उसके रास्ते का काँटा। मेरे जाते ही वह आप लोगों को लील लेगा।''[४] एक अनपढ़ स्त्री अपने और अपने बूढ़े सास — ससुर के लिए सम्मान और सुरक्षा का जीवन चाहती है लेकिन गाँव में ऐसा कोई कानून नही जो उनके जीवन की उनके सम्मान की रक्षा कर सके। आखिर कोई कब तक सिर्फ जीने के लिए लड़ता रहे। जिए कब?

जीवन के सवाल और दो बूढ़े लोगों की जिन्दगी। गाँव की लचर कानून व्यवस्था। कोर्ट कचहरी के कानून की परिभाषा इन अनपढ़ लोगों के लिए इतनी जल्दी बदलती है जितनी जल्दी बहता पानी भी अपनी दिशा नही बदल पाता है। ऐसे मै एक असहाय और जवान स्त्री आखिर जीवन के प्रश्नों के उत्तर पाए तो कहाँ से ? लेकिन कुच्ची खुदको असहाय मानती ही नहीं। उसकी सोच और उसके निर्णय उसे पुरुषवादी प्रणित सोच और मर्यादा के नाम पर अमर्यादित व्यवहार से बगावत करने को तत्पर करते है कुच्ची अपने चरित्र में मैत्रेयी की —सारंग,मंदा,अल्मा,प्रभा खेतान की —नलिनी, मृदुला गर्ग की— मनु, कृष्णा सोबती की —मित्रो, चित्रा मुदगल की— सुधा, नासिरा शर्मा की— जीनत, उषा प्रियम्वदा की सुषमा मन्नू भंडारी की शकुन सहित उन तमाम स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है, जिन्हें सिर्फ इसलिए प्रताड़ित होना पड़ा कि उन्होंने समाज की जड़ परम्पराओं और बोझ की तरह लादी गयी अनचाही मर्यादाओं को ढोने से इंकार किया।

कुच्ची के हर फैसले की हिमायत उसके बूढ़े सास— ससुर करते है। बेटे की असमय मौत ने उन्हें असहाय और अपाहिज तो बनाया ही साथ ही जवान

कुच्ची के जीवन के प्रश्न उन्हें मरने की इजाजत नहीं देते। यहाँ स्त्री जीवन के प्रश्नों को एक पुरुष लेखक ने बड़ी ही संवेदना के साथ मुखर किया है। शिवमूर्ति जी ग्रामीण पृष्ठभूमि में आस – पड़ोस और परिवारों के बीच लगाव– खिचाव, दुराव – छिपाव, प्रेम– घ्रणा, लेन–देन, उतार – चढ़ाव के साथ समाज में परम्पराओं के नाम पर आधी आबादी के साथ हर पल, हर कहीं होने वाले दुराव – छिपाव को बड़ी ही संजीदगी के साथ रखते है।

देह की जरूरत अगर मर्द के लिए सामान्य है तो एक स्त्री के लिए असामान्य कैसे हो सकती है। बात अगर खानदान के वारिस की हो और घर का एकमात्र चिराग बिना वारिस दिए बुझ गया हो तब सारा कसूर उस जवान विधवा का। उसके लिए एकमात्र सामूहिक निर्णय यह होता है कि वो अपराधबोध के साथ चुपचाप मायके जाकर जीवनभर मुफ्त की नोकरानी की तरह दिन काटे और उस जायदाद से भी वंचित रहे जो उसके मरे हुए पति की है। क्योंकि वो जवान विधवा है। उसे हक ही नहीं जवानी में विधवा होने का और हो गयी तो भुगते फिर। रिश्ते का जेठ नियत खराब किये बैठा है –"आड़े–ओटे, अँधेरे – उजाले में घात लगाकर पटक तो कभी भी सकता है, लेकिन पटाना ? पटकना जितना आसान है पटाना उतना ही मुश्किल।"[5] अब कोई उससे सहानुभूति भी नही दिखा सकता।अगर दिखाई तो कलंक ढोने को तैयार रहे। अगर वो जवान है तो उसका कसूर। उस पर जवानी में विधवा हुई तो भी उसी का कसूर। समाज तो बेचारा बड़ा ही मासूम है। उसने स्त्री के लिए जीते जी मरने लायक तमाम सामाजिक सांचे गढ़े और पुरुष को रक्षक के रूप में भक्षक बना कर पहरेदारी सोंप दी। समाज यहीं नहीं रुका उसने एक लाचार स्त्री के दुखों को दुगुना करने के लिए उसी की आधी आबादी को ताने, उलाहने, कलंक, प्रताड़ना रूपी तरह –तरह के हथियारों से लैस कर दिया।

अस्पताल में बूढ़ी सास की सेवा करती कुच्ची को नर्स कुट्टी की बातों से इतना तो समझ में आता है कि समस्या औरत के पढ़ी लिखी या अनपढ़ होने में नहीं है समस्या मर्द स्वयं है – "जरूरत पड़ने पर मरद मिल सकता। जरूरत पड़ने पर बच्चा मिल सकता। मरद नही, हसबेंड खतरनाक होता।"[6] पुरुष एक ओरत के जीवन में मर्द बन कर उसकी उतनी फजीहत नही करता जितना पति बन कर। यह बात नर्स कुट्टी को अच्छे से समझ में आ गयी थी और इसी के चलते वह बिन ब्याही माँ बनना स्वीकारती है पर किसी मर्द से ब्याह करना नहीं ।

कुच्ची को स्त्री विमर्श का चरम बिंदु कहना कमतर ही होगा। अपने एक निर्णय से उसने आधी आबादी की तमाम पढ़ी– लिखी सभ्य कहलाने वाली, ऊँचे सामाजिक दर्जे को प्राप्त, समाज की आन– बान– शान की पोटली का बोझ अपने काँधे पर लेकर चलने वाली उस आधी आबादी को अपना अनपढ़ अंगूठा कुछ इस तरह से दिखाया कि लाख ढूंढने पर भी उसे सजा देने का कोई हल कानून की किताबों तक में न मिल सका –"जिसको आना है, वह तो अब आकर रहेगा अईया। छिपाने से लौट थोड़े जाएगा। ..किसी का नाम धरना जरूरी है क्या अम्मा ? अकेले मेरा नाम काफी नहीं है?"[7] अपने लिए अपने बूढ़े सास – ससुर के जीने की आस ..कुच्ची की अपनी संतान। कुच्ची ने अपने स्त्रीत्व के लिए हठ किया उसे पाया भी और समाज की झूठी नैतिकता को अपने मात्रत्व की धार से काट कर अलग कर दिया।

अनपढ़, असहाय, अकेली कुच्ची जब अपने हक के लिए संघर्ष करती है तब उसके मायके वाले उससे रिश्ता तोड़ देते है। गाँव भर में उसके जीने के तौर – तरीकों पर ऊँगली उठाई जाती है लेकिन कुच्ची ने अपने लिए अस्तित्व को चुना। उसे इस बात का बहुत गहरा यकीन था कि अपने हक के लिए आवाज उठाना उसका नैतिक दायित्व है। समाज और समाज के रिवाज उसे जीने नहीं देंगे। तब अपने जीने के तौर – तरीके भी उसे खुद ही गढ़ने होंगे। बस फिर क्या था सिंमाज की खोखली मर्यादाओं की दीवार भरभरा के गिर गयी। यह भारतीय परिवेश की ही देन है जो पुरुष और स्त्री के लिए भेदभाव पूर्ण मर्यादाएं सुनिश्चित करता है। लेखिका क्षमा शर्मा लिखती है –"परिवार के ढांचें में चाहे स्त्री सबसे अंतिम सीढि पर खड़ी हो,व्रत करने कराने के लिए उसे सौ फीसदी आगे रखा गया है। परिवार में भी पति और पुत्र के लिए किये जाने वाले व्रत सबसे महत्वपूर्ण है। पुत्री के लिए कोई व्रत नहीं है। स्त्री का अंतिम और प्रथम कर्तव्य परिवार की रक्षा करना है। वही परिवार जो उसके पाँव में कर्तव्य की तो हजार बेड़ियाँ डालता है,

अधिकार कुछ नहीं देता।''[८] स्त्री जिए तो परिवार के लिए और उसे मारे तो परिवार। आखिर इस तरह के अमानुषिक दायरे स्त्री के लिए बनाये किसने ? स्वयं स्त्री ने तो हरगिज नहीं।

आधुनिक परिवेश चाहे जितना आधुनिक होने का दम्भ भरे पर वास्तविकता में स्त्री के लिए आधुनिकता जैसी कोई चीज है ही नहीं। उसके पहनावे से उसे जज किया जाता है। अगर सिंगल है तो मान लिया जाता है कि जरुर उसके चरित्र पर कोई न कोई दाग होगा वरना पति छोड़ता ही क्यों ? भले ही उस निकम्मे पति को स्वयं उसी ने छोड़ा हो। आज भी लोगों को अकेली स्त्री आँख में किरकिरी की तरह चुभती है। कोई स्त्री अकेले कैसे जी सकती है ? अकेले खुश कैसे रह सकती है ? उसे तो खुश रहने के लिए पुरुष का आसरा चाहिए। इस तरह की दोयमदर्जे वाली सोच को एक ग्रामीण परिवेश की अनपढ़ जवान विधवा जब धता बताती है, तब त्रिया चरित्र के नाम पर न जाने कितने गड़े मुर्दे उखाड़े जाते है ताकि उसे चरित्रहीन और कलंकिनी साबित किया जा सके। लेकिन कोई एक ऐसा सामने नहीं आता जो उस सच को स्वीकार करे जिसके धरातल पर स्त्री और पुरुष के लिए सब कुछ एक जैसा होना चाहिए चाहे मापदंड फिर देह के हों या देवता के।

कुच्ची देह की बात भी करती है और देह पर अधिकार की भी। भला कोई स्त्री अपनी ही देह के लिए निर्णय क्यों नहीं ले सकती। माँ बनने का अधिकार स्वयं प्रक्रति ने उसे दिया है लेकिन पुरुष ने उसकी कोख पर भी बलात अधिकार जमा लिया ताकि कही वो उससे अधिक समर्थ न हो जाये। स्त्री देह और स्त्री का मातृत्व उसकी अपनी निजी सम्पत्ति है जिस पर कोई कानून कोई समाज या कोई पुरुष अपना वर्चस्व नही जता सकता।

सन्दर्भ सूची —

१ शिवमूर्ति : कुच्ची का कानून, पृष्ठ —७७
२ शिवमूर्ति : कुच्ची का कानून, पृष्ठ —९०
३ शिवमूर्ति : कुच्ची का कानून, पृष्ठ — ९१
४ शिवमूर्ति : कुच्ची का कानून, पृष्ठ — १०४
५ शिवमूर्ति : कुच्ची का कानून, पृष्ठ — ८५
६ शिवमूर्ति : कुच्ची का कानून, पृष्ठ — ९३
७ शिवमूर्ति : कुच्ची का कानून, पृष्ठ — ७७
८ क्षमा शर्मा : स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, पृष्ठ —४७